साहित्य, समाज और हिंदी सिनेमा

डॉ० सुनील बापू बनसोडे

सेवासदन, सबन, सद्गति, तमस
डाक बंगला, त्याग-पत्र, चित्रलेखा
अतिथि तुम कब जाओगे, अनवन
आपका बंटी, एक और पंचवटी
मोहनदास, आधे अधूरे

जीनत, मुलज़ान, जावेद अख़्
शकील बदायुनी

प्रेमचंद, कमलेश्वर,
मन्नू भंडारी,
भीष्म साहनी, प्रियवंद, निर्मल वर्मा
शरद जोशी, राही मासूम रज़ा

Scanned by CamScanner

प्रकाशक
शुभम् पब्लिकेशन
3A/128, हंसपुरम्
कानपुर–208021
सम्पर्क : 0512-2626241, 09415731903
shubhampublicationsknp@gmail.com
Website : www.shubhampublications.com

ISBN : 978-93-83144-04-4

प्रथम संस्करण : 2015
मूल्य : 900.00 रुपये

शब्द साज :
विष्णु ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक :
पूजा प्रिण्टर्स, कानपुर

जिल्द साज :
तबारक अली, कानपुर

Sahitya, Samaj Aur Hindi Cinema

Edited By : Dr. Sunil Bapu Bansode

Price : Rs. Nine Hundred Only

Scanned by CamScanner

55. जिंदगी की सरल व्याख्या करने वाले
कवि गीतकार : शैलेन्द्र 268 - 273
- डॉ. आरिफ शौकत महात

56. कवि एवं गीतकारों का हिंदी सिनेमा में योगदान 274 - 278
- डॉ. भारत श्रीमंत खिलारे

57. हिंदी गीतकार और हिंदी सिनेमा का अंत:संबंध 279 - 282
- डॉ. गजानन चव्हाण

58. हिंदी कविता की संगीतमय अभिव्यक्ति- गीत का
हिंदी सिनेमा को योगदान 283 - 287
- डॉ. सहदेव वर्षाराणी निवृत्तीराव

59. हिंदी सिनेमा के मील के पत्थर - कवि प्रदीप 288 - 293
- प्रा. महादेवी सुंगारे

60. सामाजिकता की अभिव्यक्ति में नीरज के गीत 294 - 297
- प्रा. सुपर्णा संसुद्धी

61. हिंदी फिल्मी गीत : कल और आज 298 - 301
- डॉ. सविता लालासो नाईक निंबालकर

62. गीतकारों का हिंदी सिनेमा में योगदान 302 - 307
-डॉ. हेमलता श्याम पाटील

63. कवि एवं गीतकारों का हिंदी सिनेमा में योगदान 308 - 310
- डॉ. मोहन मंगेशराव सावंत

VI. हिंदी और हिंदी सिनेमा

64. बदलते सामाजिक परिवेश में हिंदी सिनेमा 311 - 314
- डॉ. गोरखनाथ किर्दत

65. हिंदी साहित्य और सिनेमा : एक चिंतन 315 - 320
- प्रा. किरण बी. चौगुले

66. हिंदी सिनेमा में लोकगीतों का योगदान 321 - 324
- प्रा. जगन्नाथ आबासो पाटील

67. हिंदी सिनेमा : विविध सामाजिक आयाम 325 - 328
- डॉ. अश्विनी काकडे

68. हिंदी फिल्मों में दलित साहित्य 329 - 332
- नागापुरे संतोष

Scanned by CamScanner

64

बदलते सामाजिक परिवेश में हिंदी सिनेमा

– डॉ. गोरखनाथ किर्दत

सन 2013 का वर्ष भारत में सिनेमा की सदी के रूप में मनाया गया। भारत में सिनेमा की शुरुआत 1896 में हो गयी थी, जब 7 जुलाई, को वाट्सन होंटल में ल्युमिएर मूविंग पिक्चर्स का पहला सिनेमैटोग्राफ शो हुआ था। सन 1998 में पहली बार स्वदेशी लघु फिल्मों को बनानी की शुरुआत कोलकाता के हीरालाल सेन ने की थी। उन्होंने आपनी पहली लघु फिल्म 'द फ्लावर ऑफ पर्शिया' का निर्माण किया। इन फिल्मों की अवधि दो से तीन मिनट हुआ करती थीं। इसके पश्चात् भारतीय सिनेमा के पितामह महाराष्ट्र; कोल्हापुर के दादासाहब फाल्के जी ने हिंदू पौराणिक चरित्र राजा हरिश्चंद्र के जीवन चरित्र पर 'राजा हरिश्चंद्र' नामक पहली फीचर फिल्म बनायी। जिसका पहला सार्वजनिक प्रदर्शन 3 मई, 1913 को 'कोरोनेशन थिएटर' में हुआ। "हालाँकि दादासाहब तोरणे द्वारा निर्देशित फिल्म 'पुंडलिक' का प्रदर्शन 18 मई, 1912 को मुंबई के कोरोनेशन थिएटर में ही हुआ था। किंतु इस फिल्म को पहली भारतीय फिल्म का दर्जा नहीं मिला।"[1] दादासाहब फाल्के ने स्वयं 'हिंदुस्तान फिल्मस्' नाम से एक कंपनी की स्थापना की थी। जिसके तहत उन्होंने लगभग 95 फीचर फिल्में और 26 लघु फिल्में बनाई। उनके द्वारा बनाई प्रायः सभी फीचर फिल्में पौराणिक कथाओं पर आधारित थीं। इसका कारण यह था कि तत्कालीन भारतीय समाज में नाटक और फिल्में देखना उतना अच्छा नहीं माना जाता था। ऐसे समय में धार्मिक और पौराणिक फिल्मों के माध्यम से ही दर्शकों को सिनेमा की ओर आकर्षित किया जा सकता था। धीरे–धीरे लोगों की रुचि के अनुसार सामाजिक विषयों को आधार बनाकर फिल्में बनाई जाने लगी। "इसमें बाबूराव पेंटर का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने 1925 में 'सावकारी पाश' नामक फिल्म बनयी थी, जो किसानों के ऋण की समस्या पर आधारित थी।"[2] इसके पश्चात् फिल्म निर्माण के क्षेत्र में मुख्यतः तीन और फिल्म कंपनियों का निर्माण हुआ। जिसमें 1929 में कोल्हापुर में 'प्रभात फिल्म कंपनी' की स्थापना की गयी। इसकी स्थापना करने वालों में वी. शांताराम,

Scanned by CamScanner

विष्णुपंत दामले, एस्. फत्तेलाल आदि शामिल थें। इस फिल्म कंपनी ने हिंदी और मराठी में कई सामाजिक दृष्टि से उद्देश्यपूर्ण फिल्में बनायी। इसके साथ ही 1929 में बी. एन. सरकार ने कोलकाता में 'न्यू थिएटर्स' फिल्म कंपनी की स्थापना की जिससे नितिन बोस, पी. सी. बरूआ, अमर मलिक, देवकी बोस, के. एल. सहगल, केदार शर्मा, बिमल रॉय, ऋशिकेश मुखर्जी जैसे महान फिल्मकार जुड़े रहें। इन्होंने बांगला और हिंदी में कई महत्वपूर्ण फिल्में बनाई। 1930 में हिमांशु रॉय द्वारा स्थापित 'बॉम्बे टॉकीज्' से भी कई बड़े कलाकार जुड़े रहें।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे, तीसरे दशक की फिल्मों का विषय धार्मिक एवं पौराणिक था। किंतु 1936 के बाद प्रेमचंद युग अर्थात् प्रगतिशील विचारधारा के लेखन के साथ ही फिल्मों के विषय में भी परिवर्तन हो गया। स्वाधीनता का राष्ट्रीय आंदोलन जन आंदोलन में बदल चुका था। इसमें किसान, मजदूर, दलित और स्त्रियों की भागीदारी भी बढ़ती जा रही थी। राजनीतिक मुक्ति के पर्याय के साथ ही लोग सामाजिक समता की माँग कर रहे थें। इसी माहौल से प्रभावित होकर प्रभात फिल्म कंपनी की ओर से वी. शांताराम ने 'अमृत मंथन'; 1934 फिल्म बनायी जिसमें पशु बली की समस्या को उठाया गया। इसी साल वनी मोहन भावनानी की 'मजदूर' फिल्म, जिसकी पटकथा प्रेमचंद ने लिखी थी, इस फिल्म में पूँजीपतियों और व्यापारियों के विरोध में मजदूरों के अधिकारों को विषय बनाया गया।

'बॉम्बे टॉकीज्' ने 1936 में 'अछूत कन्या' फिल्म के माध्यम से सवर्ण नायक और अछूत नायिका की प्रेम कहानी द्वारा जातिगत भेदभाव का प्रश्न उपस्थित किया था। 1940 के बाद फिल्म उद्योग काफी विस्तार ग्रहण चुका था इस बीच अनेक महत्वपूर्ण फिल्मकार हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में सक्रिय हुए थें। जिनमें बिमल रॉय, केदार शर्मा, मेहबूब खान, सोहराब मोदी, ख्वाज़ा अहमद आब्बास, राज कपूर, चेतन आनंद, कमाल आमरोही, बी. आर. चोपड़ा, यश चोपड़ा आदि प्रमुख थें। इस समय के फिल्मकारों ने विशिष्ट सामाजिक उद्देश्य को केंद्र में रखकर फिल्में बनायी जिसमें रोटी (1942), आँखें (1944), प्रतिमा (1945), मेरा सुहाग (1947), जेल यात्रा (1947), आदालत (1948), नरसिंहावतार (1949) आदि प्रमुख हैं। इन फिल्मों में मध्यवर्गीय जीवन में आनेवाले बदलावों और संघर्ष को ही नहीं बल्कि समाज के पददलित वर्गों के जीवन को भी विविधता के साथ पेश किया गया।

1950 के बाद फिल्मों में निर्देशकों का महत्व अधिक बढ़ गया। अभिनय में यथार्थवादिता को महत्व प्राप्त हुआ। दिलीप कुमार जैसे अभिनेताओं ने उस समय अपना प्रभाव दिखाया। इस समय की नायिकाओं में नर्गिस, मीनाकुमारी, नुतन, मधुबाला, वहीदा रहमान आदि प्रमुख थीं। 1960 के बाद अधिकतर फिल्में नायक केंद्रित बनने लगी। नायक, नायिका और खलनायक वाले प्रेम त्रिकोण की

Scanned by CamScanner

कहानियाँ फिल्मों में दिखाई देने लगीं। नायक को ग्लैमराईज किया जाने लगा। इस दौर में शम्मी कपूर, जॉय मुखर्जी, विश्वजीत, राजेश खन्ना, शशि कपूर आदि प्रमुख नायक थें। 1970–80 के दशक में फिल्में व्यावसायिकता की ओर मुड़ने लगी। अभिनेताओं को मुहमाँगा पैसा मिलने लगा। और वितरकों ने अपना दबाव बनाना शुरू कर दिया। गीत, संगीत, नृत्य, रोमांच, अभिनय में अमूलाग्र बदलाव होने लगा। व्यावसायिकता और रचनात्मकता का स्पष्ट भेद फिल्मों में दिखाई देने लगा। 1975 में बनी 'शोले' फिल्म जिसका बज़ट दो से तीन करोड माना जाता है, उस वक्त की बिग बज़ट फिल्म थी। जिसने लगभग 15 करोड का व्यवसाय करते हुए सभी फिल्मों का रिकॉर्ड तोड़ दिया था।

1990 के बाद फिल्मों में दो धाराएँ दिखाई देने लगीं। व्यावसायिक और रचनात्मक फिल्में बनने लगीं। व्यावसायिक फिल्में प्रायः यथास्थितिवादी थी। जबकि रचनात्मक फिल्मों में सामाजिक बदलाव के संकेत दिखाई दे रहे थें। इस समय के प्रमुख नायकों में अमिताभ बच्चन, जितेंद्र, विनोद खन्ना, मिथुन चक्रवर्ती आदि प्रमुख थें। इस वक्त की नायिकाओं मे रेखा, जया और हेमामालिनी प्रमुख रही हैं, तो प्रेम चोपड़ा, गुलशन ग्रोवर, परेश रावल, आमरीश पुरी, शक्ति कपूर आदि ने खलनायकों का किरदार निभाया है। 20 वीं सदी के अंतिम दशक में अमिर सलमान और शाहरूख आदि खान मंडली के साथ ही अजय देवगण, अक्षय कुमार जैसे नायकों ने फिल्म इंडस्ट्री पर आपना प्रभाव बनाया रखा है। माधुरी दीक्षित, करिश्मा कपूर, काजोल के पश्चात् एश्वर्या रॉय, सुश्मिता सेन, करीना कपूर, कैतरीना कैफ, प्रियंका चोपड़ा, दीपिका पदुकोन तथा अनुष्का शर्मा जैसी नायिकाओं ने अपना जलवा दिखाया है।

वस्तुतः समय के साथ तीव्र गति से परिवर्तित होती हिंदी फिल्मों का पूरा रूप ही पलट गया है। "फिल्म लेखन में निर्देशक, अभिनेता, अभिनेत्रियाँ यहाँ तककि कैमेरामन को भी निर्देशक की दृष्टि पर निर्भर रहना पड़ता है।"[3] दर्शकों की रुचि भी बदल गयी है। कथा, गीत संगीत, नृत्य, अभिनय और भाषा आदि सभी स्तरों पर फिल्मों का कलेवर ही बदल गया है। संगणक, इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी के कारण फिल्में कम समय में बनाई जाने लगी हैं। जिसमें वास्तविकता कम और कल्पना का विस्तार ज्यादा दिखाई देने लगा है। सिडी और इंटरनेट के माध्यम से ये फिल्में न सिर्फ घर–घर तक बल्कि विश्व के कोने–कोने तक एक साथ पहुँच रही हैं। फैशन परस्त पाश्चिमात्य संस्कृति के अनुकरण से फिल्मों में बहुत ही छिछलापन, अश्लीलता और निरर्थकता आने लगी हैं। जो फिल्में कभी सामाजिक सुधार का आधार थी उसमें आज समाज विघातक दृश्य दिखायी देते हैं। आज की ज्यादातर फिल्में ऐसी बनाई गई हैं, जिसको परिवार के सभी सदस्य एकत्रित बैठकर देख नहीं सकते। अश्लिहल शरीर प्रदर्शन और घिनौने नृत्य का विपरीत असर युवा पीढ़ी पर हो रहा है। ये फिल्में सच्चाई की जमीन से काफी

Scanned by CamScanner

दूर जाती हुई दिखाई दे रही हैं। हाँ एक बात जरूर है कि हॉलीवुड की फिल्मों से भी बॉलीवुड की फिल्में देखने वालों की संख्या विश्व में बढ़ती जा रही है। किंतु संस्कृति, सभ्यता और सामाजिक पतन के साथ व्यावसायिक दृष्टिकोण के तहत सामाजिक दायित्व के निर्वहन की चुनौती आज भी बनी हुई है।

संदर्भ–

1. डॉ. सुधीर सागर – हिंदी सिनेमा टी. वी. और नाटकों में दलित दस्तक, पृ. 10, लोकमित्र प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. सं. पंकज बिष्ट– 'समयांतर' (मासिक), मई–2013, वर्ष–44, अंक–8, पृ. 30
3. www.shabdankan.com date 8th September, 2014
   सिनेमा और हिंदी साहित्य–इकबाल रिज़वी।

यशवंतराव चव्हाण
कला व वाणिज्य महाविद्यालय
इस्लामपुर, सांगली

●

Scanned by CamScanner